परिशिष्ट-11उपसंहार

१. सहायक ग्रंथ-अनुक्रमणिका

कोश

आदर्श हिंदी शब्दकोश (पं. रामचंद्र पाठक मार्ग, वाराणसी)
आदर्श हिंदी संस्कृतकोश (चौखंबा, वारणसी)
ग्रीस पुराण कथाकोश : कमल नसीम, (अक्षर, नई दिल्ली १९८३)
प्राचीन चरित्र कोश (भारतीय चरित्र कोश मंडल, पूना)
संस्कृत-हिंदी कोश : वामन शिवराम आप्टे (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)
हिंदी साहित्य कोश (ज्ञान मंडल, वारणसी)

संस्कृत

अथर्ववेद संहिता (आर्य साहित्य मंडल, अजमेर)
तर्कभाषा (चौखंबा, सुरभारती, वाराणसी)
न्यायवार्तिक (इंडोविजन, गाजियाबाद)
उपनिषद् अंक : कल्याण (गीता प्रेस, गोरखपुर)
पद्म पुराण (मनसुखराय मोर, कलकत्ता)
बृहत्संहिता (चौखंबा, वाराणसी)
ब्रह्मावैवर्त्त पुराण (मनसुखराय मोर, कलकत्ता)
भविष्य पुराण (कल्याण) गीताप्रेस गोरखपुर
भावप्रकाश (खेमराज, श्रीकृष्णदास, बंबई संवत् १९७८)
मत्स्यपुराण : कल्याण (गीताप्रेस, गोरखपुर)
महाभारत (गीताप्रेस, गोरखपुर)
योगवाशिष्ठ : कल्याण (गीताप्रेस, गोरखपुर)
व्रतार्क (रामकुमार प्रेस, हजरत गंज, लखनऊ)
शिवपुराण : कल्याण (गीताप्रेस, गोरखपुर)
श्रीमद्भागवतमहापुराण (गीताप्रेस, गोरखपुर)

अभिनंदन ग्रंथ

सेठ कन्हैयालाल पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ (ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा)
प्रेरक साधक : पं. बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनंदन ग्रंथ (सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली)

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९७

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

आकर ग्रंथ

रामचरित मानस (गो. तुलसीदास)
कबीर ग्रंथावली

ब्रज लोकवार्ता संबंधी पुस्तकें

डा. अंबाप्रसाद सुमन : कृषक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली (हिंदुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद)

देवेन्द्र सत्यार्थी : धीरे बहो गंगा (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली)

डॉ. राजेंद्र रंजन : ब्रज लोकगीत (उत्तरप्रदेश संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ)

: लोकोक्ति और लोकविज्ञान (लोकविज्ञान परिषद्, के. एल. जैन, सासनी)

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल : पृथ्वीपुत्र (सस्ता साहित्य, नई दिल्ली)

डॉ. विद्यानिवास मिश्र : ब्रज के लोकमंगल का संसार (क. मा. हिंदी विद्यापीठ, आगरा)

डॉ. सत्येंद्र : ब्रज लोक संस्कृति (ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा)

पत्र-पत्रिका : विशेषांक

आशा : सासनी सर्वेक्षण अंक (राजेंद्र रंजन, १९७१-७२)

: लोकशास्त्र अंक (राजेंद्र रंजन, १९७३)

प्रेरणा : जनपदीय अंक (सासनी)

भारतीय साहित्य : (डॉ. सत्येंद्र, क. मा. हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय)

विशाल भारत (पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, कलकत्ता)

ज्ञानतरंगिणी : जनपदीय अंक (सं. : डॉ. अनिल कुमार राय आंजनेय, बक्सर)

२. जनपद-आंदोलन

स्वतंत्रता का राष्ट्रीय-आंदोलन मात्र राजनैतिक नहीं था, उसमें भारत की अस्मिता की हुंकार थी। राष्ट्रीय-आंदोलन की टेर गाँव-गाँव में गूँज रही थी और भारत की जनशक्ति एक बार फिर नए प्रभात में अपने 'स्वत्व' को 'पहचान' रही थी। राजा, राव, अमीर, जागीरदार और जमींदारों के पैर धरती से उखड़ रहे थे और उनकी अभिजातवर्गीय संस्कृति का

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९७

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

अहंकार टूट रहा था और जनता को अपनी संस्कृति का तेज दिखाई देने लगा था। 'विदेशी' की सत्ता के सामने 'स्वदेशी' की जिस संप्रभुता का उदय हो रहा था, उसके साथ भारत के दर्शन, भारत की संस्कृति और भारत के संपूर्णइ तिहास की प्रेरणा सक्रिया थी। इस शताब्दी के चौथे दशा में हिंदी साहित्य के क्षेत्र में जो जनपदीय-आंदोलन उठा, उसका स्रोत वही प्रेरणा थी।

फरवरी, १९३४ के विशाल भारत के अग्रलेख में ब्रजसाहित्य मंडल, अवधसाहित्य मंडल तथा बुंदेलसाहित्य मंडल के निर्माण की योजना के साथ ही सहस्रों सांस्कृतिकइ काइयों की स्थापना की माँग की गयी थी, यहाँ से साधारण जनता प्रेरणा तथा स्फूर्ति प्राप्त कर सके। इस अग्रलेख में हिंदी और उसकी बोलियों के माध्यम से करोड़ों व्यक्तियों को स्वस्थ मानसिक भोजन पहुँचाने की चिंता एवं टूँड़े खंगार, सूरे धीमर, किसना खटीक तथा गोविंदा अहीर की कला-अभिव्यक्ति के प्रोत्साहन और विकास का प्रश्न था। इस प्रश्न ने साहित्य-मनीषियों के मस्तिष्क में जो उथल-पुथल की, उसे हिंदी की तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के अंकों में देका जा सकता है।

जिस प्रकार हिमालय से निकलनेवाली शत-सहस्र जलधाराएँ गंगा का प्रवाह बन जाती हैं उसी प्रकार जनपदों को केंद्र बनाकर साहित्यिककार्य करने के विचार के साथ अनेक योजनाएँ जुड़ गयीं और उसने जनपदीय आंदोलन का रूप ले लिया। जनपदीय आंदोलन के साथ जनपदीय भाषा और जनपदीय संस्कृति का प्रश्न था। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने मातृभाषाओं का प्रश्न उठाया तथा प्राचीन जनपदों और उनकी वर्तमान बोलियों की एक सूची प्रकाशित की थी। आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल ने जनपदीय कार्यक्रम की ऐसी अवधारणा प्रस्तुत की, जिसमें राष्ट्रीय जीवन की अविच्छिन्न-परंपरा के साक्षात्कार का संकल्प था।

सन् १९४० के आसपास एक ओर ब्रजसाहित्य मंडल, बुंदेलखंड साहित्य मंडल जैसी संस्थाओं का उदय हो रहा था, दूसरी ओर देवेंद्र सत्यार्थी अपने बाहुबल के भरोसे समस्त भारत की भाषाओं के गीतों का संग्रह करने के लिए घूम रहे थे। मालवा में श्याम परमार, गुरु जनपद में कृष्णचंद शर्मा, मैथिली में राम-इकबाल सिंह राकेश और बिहार में गणेश चौबे लोकसाहित्य का संकलन कर रहे थे। बुंदेलखंड में चंद्रभान ने लोकसाहित्य संकलन किया था एवं राजस्थान में नरोत्तम स्वामी और कन्हैयालाल महल इस कार्य में प्रवृत्त हुए थे। ब्रज में डॉ. सत्येंद्र ने लोकसाहित्य का अलख जगाया था। रामनेरश त्रिपाठी सन् १९२५ से हि लोकगीतों के संकलन-संपादन में प्रवृत्त थे और उनके विचार भी वही थे, जो राष्ट्रीय आंदोलन की धरती से उपजे थे। वे अपने देश के सच्चे सवरूप को पहचानना चाहते थे।

'कविता कौमुदी' (पाँचवाँ भाग : ग्रामगीत : विक्रम संवत् १९८६) की भूमिका में उन्होंने लिखा था कि 'एक विचित्र प्रकार की शिक्षा के प्रभाव से हम लोग अपने देश से बहुत दूर हो गये हैं। हम अपनी भाषा के थोड़े-से शब्दों की परिधि में कैद हैं। न हम उस परिधि से बाहर जाना चाहते हैं और न वे शब्द देश के अंतर्नाद को हमारी सीमा में प्रवेश करने देते हैं। हम अपने देश में रहते हुए भी विदेशी जैसे हैं। हमने वह पगडंडी छोड़ दी है, जिसके सहारे हम अपने विश्वविख्यात पूर्वजों के देश में निश्चय पहुँचे जाते। वह देश कहाँ है, जहाँ वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और भवभूति की आत्माएँ निवास करती हैं। वह देश कौन-सा है, जिसके घर-घर में तुलसीदास बोल रहे हैं? सूरदास लकों का रूप धरकर कहाँ खेल रहे हैं, कबीर कहाँ अपनी आत्मा निचोड़कर अमृत रस बाँट रहे हैं? अरे ! ढाक के घने जंगलों में आम, महुवे, पीपल, इमली और नीम की घनी और शीतल छाया में नदियों के कलरव के साथ तुलसी के चबूतरे के निकट चमेली, माधवी, कामिनी और मालती के फूलों की सुगंध में वंशी की ध्वनि में कोकिल के अलाप में लहराती हुई पुरवा हवा में और लहलहाते हुए खेतों के किनारे जीवन का जो प्रवाह अनादि काल से प्रवाहित है, क्या हम उस प्रवाह से अलग हो गए हैं?'

'हमारी आँखें तो यही हैं किंतु जाना पड़ता है हम यूरोप में जाग रहे हैं। हमारे कान तो यहीं हैं, किंतु जान पड़ता है हम यूरोप की ही आवाज सुर रहे हैं। हमारा मन तो यहीं है, किंतु जान पड़ता है हम उससे केवल पश्चिम को

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९७

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

ही देख सकते हैं। बात क्या है? इतनी आसानी से हमें इतनी दूर कौन उठा ले गया?'

'आओ एक बार चलकर हम अपने उस पुराने देश को देखें तो सही, जो आम के घने बागों के बीच बसा हुआ है।-जहाँ घरों के पिछवाड़े घनी बँसवाड़ी है। आम और महुवे के पेड़ों की छाया जहाँ रास्तों को शीतल और सुखद बनाए रखती हैं। जहाँ प्रत्येक कंठ से गान निकलता है। जहाँ की चौपालों में राजनीति के जटिल प्रश्न एक-एक वाक्य से सुलझाए जाते हैं। जहाँ मनुष्य मात्र के जीवन का निर्दिष्ट लक्ष्य और निश्चित पथ है। जहाँ धर्म के बंधान में एक प्रकार की स्वतंत्रता है। जहाँ प्रेम का नशा और आनंद का उन्माद है। जहाँ के पशु-पक्षी, वृक्ष, लता, सूर्य-चंद्र और मेघ भी मनुष्य-जीवन के सहचर हैं।'

निश्चित ही लोकगीतों की इस साधना के पीछे भारत की आत्मा के साक्षात्कार का संकल्प था, इसी कारण लाला लाजपत राय, गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर, महामना मदन मोहन मालवी, बाबू रामानंद चटर्जी जैसी विभूतियों ने इस संकल्प को अपने आशीर्वाद से अभिमंत्रित किया था। इसी प्रकार देवेंद्र सत्यार्थी की पुस्तक 'धरती गाती है', को महात्मा गाँदी ने इन शब्दों में आशीर्वाद दिया था-'सचमुच लोकगीतों में धरती गाती है, पहाड़ गाते हैं, नदियाँ गाती हैं, फसलें गाती हैं, उत्सव और मेले, ऋतुएँ और परंपराएँ सभी गाती हैं।' जनपदीय आंदोलन के सूत्रधार तथा 'विशाल भारत' एवं 'मधुकर' के संपादक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर के संपर्क में शांतिनिकेतन में भी रहे थे तथा महात्मा गाँधी के साथ वर्धा में भी,इ सलिए उनके जनपदीय विचार के पीछे राष्ट्रीय दृष्टिकोण था।

देवेंद्र सत्यार्थी की कृति 'धीरे बहो गंगा' के आमुख में डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा था कि इस आत्मनिरीक्षण के मुहूर्त में हमें ऐसा प्रतीत होता है कि अपने सांस्कृतिक मर्म-स्थानों को पुनः स्वस्थ बनाने के लिए लोकजीवन और जनपदीय-साहित्य के परिचय के अतिरिक्त और कोई रीति-नीति हमारे सामने नहीं है। विगत शताब्दी में हमारे मान का ठाठ विदेशी शिक्षा और प्रभावों के कारण अपने पैरों की पृथ्वी से उखड़ गया। राष्ट्र के जीवन में आत्महनन के तुल्य यह भारी अभिशाप आया। हमें शनैः-शनैः अपने पात्र में फिर से अपनी संस्कृति का अमृत भरना होगा। इस स्थिति को पाने के लिए लोकसाहित्य और लोकगीतों का सहारा सबसे अधिक मूल्यवान सिद्ध हो सकता है। इन असंख्य लोकगीतों की आत्मा अभिन्न है। भाषा का भेद होते हुए भी गीतों में व्याप्त भारतीय मानव का हृदय उसके सुख-दुःख की अनुभूति, उसकी आशा और निराशा एक जैसी है। शब्दों की दृष्टि से स्थान-स्थान के गीत अलग-अलग होने पर भी सबमें समान अर्थ का धागा पिरोया हुआ है। अर्थ की रचना गीतमय भारत को विलक्षण एकता प्रदान करती है।

आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल ने जनपद-कल्याणी योजना में पंचवर्षीय कार्यक्रम प्रस्तुत किया था-

'वर्ष १ : साहित्य, कविता, लोकगीत, कहानी आदि जनपदीय साहित्य के विविध अंगों की खोज और संग्रह, वैज्ञानिक पद्धति से उनका संपादन और प्रकाशन। वर्ष २ : भाषाविज्ञान की दृष्टि से जनपदीय भाषा का सांगोपांग अध्ययन अर्थात् उच्चारण या ध्वनिविज्ञान, शब्दकोश, प्रत्यय, धातुपाठ, मुहावरे, कहावत और नाना प्रकार के पारिभाषिक शब्दों का संग्रह और आवश्यकतानुसार सचित्र संपादन। वर्ष ३ : स्थानीय भूगोल स्थानों के नाम की व्युत्पत्ति और उनका इतिहास, स्थानीय पुरातत्त्व, इतिहास और शिल्प का अध्ययन। वर्ष ४ : पृथ्वी के भौतिक-पदार्थों का समग्र परिचय प्राप्त करना अर्थात् वृक्ष-वनस्पति, मिट्टी, पत्थर, खनिज, पशु-पक्षी, धान्य, कृषि, उद्योग-धंधों का अध्ययन। वर्ष ५ : जनपद के निवासी जनों का संपूर्ण परिचय अर्थात् आमोद-प्रमोद, पर्व, उत्सव, मेले, खानपान, स्वभावन के गुण-दोष, चरित्र की विशेषताओं की बारीक छानबीन और पूरी जानकारी। इस कार्य के संपादन के लिए उन्होंने भाषा-समिति, भूगोल या देशदर्शन समिति, पशु-पक्षी समिति, वृक्ष-वनस्पति समिति, ग्रामगीत समिति, जनविज्ञान समिति तथा इतिहास पुरातत्त्व समिति एवं कृषि उद्योग समिति के गठन का सुझाव दिया था। इस कार्यक्रम के पीछे अपने जन्म-सिद्ध संस्कारों और पूर्वजों की परंपरा के साथ जुड़ने का संकल्प था। उन्होंने आशा प्रकट की थी कि निकट भविष्य में लोकसंस्कृति की

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९७

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

अधिष्ठात्री कोई संस्था इस कार्य को अपने हाथ में लेगी।'

३. प्रकृति बदल रही है : एक सर्वेक्षण

हरियानगला गाँव के बहत्तर वर्षीय वयोवृद्ध श्री दामोदर त्रिगुणायत के शब्द मन में टकरा रहे हैं-पीने के पानी की ऊ भाबई ऐ। उन्होंने कहा था-मटर चना मामूली है रई ऐं, टिंडेन कूँ खेती नाँय पकर रही, टमाटर संग छोड़ गये, मक्का छोड़ गयी, पहाड़ी बढ़ गए, बरसा नेंक होंत्वे, रोग बढ़ गए और बुद्धि बिग गयी। तबी बौहरे शादीलाल (७४) ने कलियुग का भजन सुना दिया-

तीस्थ पाप द्विजा पै सेवा पुरखा धरें बाग काटें।
इंद्री खोल भानु माँऊँ बैठें दधि और सैत मिलाय चाटें।
सहस कदम बढ़ि जात शौच कूँ नंगर कौ कूआ पाटें।
सो बैतरनी में गोता मारें डूब जात मँझधारे।
जम लोक चतुरदस न्यारे।

एक ने बताया कि प्रकृति बदल रही है और दूसरे ने बताया कि इसका कारण है मनुष्य का पाप। मनुष्य के पाप और कुदरत के बदलने के बीच जिस सूत्र को मैं अपनी स्थूल आँखों से नहीं देख पा रहा था, उसे इन बड़े-बूढ़ों की अंदर की आँखों ने प्रत्यक्ष देख लिया था। यह उनकी चिंतन-प्रणाली का उदाहरण था, वे 'संपूर्ण' की अवधारणा से जुड़कर सोचते हैं।

वे यह मानते हैं कि वैज्ञानिक खेत के कारण आज गाँव के पास संपत्ति बढ़ी है, पर उन्होंने यह भी देख लिया है कि संपत्ति के साथ आलस बढ़ा है, खर्चे बढ़े हैं, कर्ज बढ़े हैं, और कलह बढ़ा है। सासनी के ये गाँव मेरे लिए नए नहीं हैं, सासनी के इकलौते कालेज के मेरे विद्यार्थी प्रत्येक गाँव में हैं और उनके सहयोग से जनपदीय जीवन का अध्ययन मैंने सन् १९६९ से ही प्रारंभ कर दिया था, किंतु आज सोच रहा हूँ कि, आज का गाँव वह गाँव नहीं है जो मैंने १९७० में, १९७३ में और फिर १९८२ के जनपदीय-सर्वेक्षण के समय देखा था। उन दिनों गाँवों के कुएँ जल से आप्लावित थे, ट्यूबवैलकोठी पर प्रायः ही सवेरे और शाम पानी चलता रहता है। प्रातःकाल और सायंकाल के दैनिक कृत्य वही करता था। बाल्टियों पानी से नहाता था फिर कुंडी में उतरकर नहाता।

आज उन्हीं गाँवों को यह क्या हो गया है? सासनी के पास ही गढ़राना गाँव है। सोचा था कि प्रातःकाल किसी कुएँ पर बैठूँगा, मन आवेगा सो गाऊँगा, दातुन करूँगा और पुष्कल जल से नहाऊँगा। इन गाँवों में पानी का संकोच नहीं देखा, पर आज देख रहा हूँ कि गढ़राना के कुएँ सूख चुके हैं, वहाँ पानी नहीं है। कई दिन से बिजली नहीं आई, गर्मियों में बिजली कम ही जाती है। सो कोई ट्यूबवैल भी नहीं चल रहा।

सठिया गाँव में जब बड़े ठाकुर भगवान सिंह (८२) से मिला तो उन्होंने बताया था कि १९६८ में ट्यूबवैल लगवाया था, तब १० फुट नीचे पानी था, पर आज पानी ४८ फुट नीच है। हर साल पाईप बढ़वाना पड़ता है। उनकी चिंता थी कि पानी खतम होने को है। खाद से जमीन रेत की तरह भुरभुरी होती जा रही है।

नगलागढ़ू गाँव के श्री रमनलाल कुलश्रेष्ठ (८६) ने कहा कि मकान तो पक्के बन गए परंतु प्रेमभाव कच्चा हो गया। चुनाव की वजह से पार्टीबंदी हो गयी। पहले दूध बेचने को ओछी बात समझा जाता था, आज गाँव में भैंसें अधिक हैं तथा गायें कम हो गयीं। इसी गाँव में ५२ जोड़ी बैल थे, आज मुश्किल से १०-१२ जोड़ी होंगे। प्रेम प्रसाद पाठक का तो कहना है कि अब गायें भी बछिया अधिक डालने लगी हैं, क्योंकि बछड़ों को लोग बेच देते हैं। पहले बछड़ा होता था

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९७

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

तो लोग पुत्रोत्सव मनाते थे। श्री रमनलाल ने कहा कि यह तो ठीक है कि बिजली आयी, ट्रैक्टर आये। थैसर आये। पहले दाँय चलती थी, तब सारी दोपहरी ब्यार की प्रतीक्षा में ही निकल जाती थी पर जितनी सुविधा बढ़ी उतना ही चोला आराम-तलब हो गया।

गाँवों में ज्ञान की परंपरा पुरानी पीढ़ी में सिमटी है। हालाँकि वे अपने ज्ञान को कुबड्ड ज्ञान कहते हैं। नई पीढ़ी में रसियाई से लगाव रखनेवाला आज कौन बचा है? हालाँकि ७८ वर्ष के मुरली सिंह और भगवान सिंह जैसे लोग अभी मौजूद हैं, जिनके पास दो-तीन रात तक रिकार्ड की जा सके, इतनी सामग्री है। फिर भी पढ़ील के स्व. रामप्रसाद पाठक, रुदायन के स्व. मिश्रीलाल वशिष्ठ, लढोटा के स्व. हरप्रसाद पाठक की याद भुलाई नहीं जा सकी।

४. लोक और शास्त्र

यों तो जिस प्रकार दिशा एक और अखंड है, जिस प्रकार काल एक है और अखंड है, उसी प्रकार ज्ञान भी एक और अखंड है, परंतु जिस प्रकार व्यवहार में चार दिशा और तीन काल मान लिये जाते हैं, उसी प्रकार ज्ञान के क्षेत्र में भी लोक और शास्त्र का वर्गीकरण किया जाता है औरइ स विषय में अनेक विद्वानों ने गहरा चिंतन किया है। गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर (माडर्न रिव्यू, सितंबर, १९३९) ने लिखा था कि यदि सब देशों के लोकगीत संकलित किए जा सकें और उनका तुलनात्मक अध्ययन हो तो यह प्रत्यक्ष होगा कि उनमें एक ही मन और एक ही हृदय छिपा है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा ता कि भारत की मूल सभ्यता वैदिक सभ्यता से एकदम भिन्न थी और आज भी लोकाचार, स्त्री-आचार और पौराणिक-परंपरा के रूप में वर्तमान है। ग्रामगीत इस सभ्यता के वेद (श्रुति) हैं। वेद भी तो अपने प्रारंभिक युग में श्रुति कहलाते थे। वेद भी आर्यों की महान जाति के गीत थे और ग्रामगीतों की भाँति सुनकर याद किए जाते थे। सौभाग्यवश वेद ने बाद में श्रुति से उतरकर लिपि का रूप धारण कर लिया पर हमारे ग्रामगीत अब भी श्रुति ही हैं। जिस प्रकार वेदों द्वारा आर्य सभ्यता का ज्ञान होता है, उसी प्रकार ग्रामगीतों द्वारा आर्यपूर्व सभ्यता का ज्ञान होता है। 'विचार और वितर्क' में आचार्य द्विवेदी ने लिखा है कि पुराने आचार्य लोग विद्वानों द्वारा अनुशीलित और गुरु-शिष्य परंपरा से प्रचारित परिष्कृत ज्ञान और आचरण को शास्त्रीय कहते थे तथा जनसाधारण के व्यावहारिक और अल्प-परिष्कृत परंपरा-लब्ध आचरण को लौकिक कहते थे। अनेक लोकवार्ताशास्त्रियों ने लोक-साहित्य को ग्राम-साहित्य कहना ठीक समझा है, परंतु यह अपूर्ण सत्य है। हमारे सामने हिंदी की विभिन्न जनपदीय भाषाओं में आज जो लोकवार्ता विद्यमान है, उसकी वस्तु और शिल्प ग्राम-परिवेश से जुड़ा है, तो उसका कारण ऐतिहासिक है।

आचार्य द्विवेदी के शब्दों में, 'भारतीय शास्त्रों ने लोकप्रचलित साहित्यरूपों की कभी उपेक्षा नहीं की, नवीन छंद, नवीन गीत-पद्धति, नवीन नाट्य रूपक लोकचित्त से छनकर शास्त्रीय स्तर तक बराबर पहुँचते रहते हैं। मध्ययुग के अनेक श्रेष्ठ प्रकरणों, चंपूकाव्यों और निजंधरी कथाओं का मूल रूप लोककथानक हैं।'

डॉ. सत्येंद्र (मध्युगीन भक्ति साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन, पृ. ६३) लिखते हैं कि जिस प्रकार जातियाँ चलती हैं, उसी प्रकार लोकवार्ता भी चलती है, जातियाँ मिलती हैं और बिछुड़ती हैं, लोक संस्कृतियाँ भी मिलती और बिछुड़ती हैं। जातियाँ परस्पर एक-दूसरे में समा जाती हैं, लोकवार्ता भी परस्पर एक-दूसरे में अंतर्भुक्त हो जाती हैं। जातियों में द्वंद्व होता है। एक जाति हारती है, दूसरी जाति जीतती है, इसी प्रकार एक जाति की वार्ता पर दूसरी का आक्रमण होता है और विजय तथा हार होती है। इसके परिणामस्वरूप हारी तथा जीती दोनों वार्ताएँ ही अपने-अपने स्वरूप में विकार को जन्म देकर एक नई प्रकार की वार्ता का प्रचलन करती हैं और इस जय-पराजय में विजयी सभ्यता और संस्कृति का दंभ जिन प्रवृत्तियों, विश्वासों, आचारों और अभिव्यक्तियों का घृणा की दृष्टि से देखता है और त्याज्य बना देता है, वे लोकवार्ता और लोकतत्त्वों में जीवित रहती हैं।

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज (सम्मेलनपत्रिका लोकसंस्कृति अंक) ने लिखा कि 'लोक-संस्कृति और

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९७

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

लोकोत्तर में उतना ही अंतर है जितना श्रद्धा और तर्क तथा सहज और सजावट में होता है; लोकसंस्कृति प्रकृति की गोद में पलती और पनपनती है, लोकोत्तर संस्कृति आग उगलती हुई चिमनियों, हुंकार करती हुई मशीनों और विद्युत बल्वों से प्रदीप्त नगरों में निवास करती है। लोकसंस्कृति के उपासक बाहर की पुस्तकें न पढ़कर अंदर की पुस्तकें पढ़ते हैं। लोकेतर संस्कृति के उपासकों में धन, पद, शिक्षा का स्वाभिमान रहता है, उनके हृदय में तर्क की चिनगारी सुलगती रहती है, लोक संस्कृति मे श्रद्धा-भावना की परंपरा शाश्वत है, वह अंतःसलिला सरस्वती की भाँति जनजीवन में सतत प्रवाहित हुआ करती है।'

देवेंद्र सत्यार्थी (धरती गाती है) के शब्दों में समय-चक्र के साथ लोकगीत के पहिए निरंतर चलते रहते हैं जबकि शास्त्र या तो देर से बदलता है अथवा नहीं बदलता, भले ही आगे चलकर वह इतिहास के गर्भ में समा जाता है। शास्त्र विशिष्टता की अनुभूति है तथा लोक सामान्य की अनुभूति है। डॉ. रामानंद तिवारीके शब्दों में वैदिक साहित्य की रचना लोककाव्य के रूप में हुई थी।

डॉ. धर्मवीर भारती ने (सिद्ध साहित्य, पृ. ११७-११९) बताया है कि तंत्र वास्तव में उन अगणित लोकाचारों तथा लोकप्रचलित रहस्यमय अनुष्ठानों का परिणत रूप है। कुबेरनाथ राय (श्री राधा का लोकयत उत्स, नवजीवन पथ, ५ नवंबर, १९७३) लिखते हैं कि अनेक पौराणिक कथाओं का मूल रूप लोकायत है। महाभारत की अनेक कथाएँ मूलतः लोककथा हैं, उन्हें पौराणिक महिमा दी गयी बाद में; जैसे-शकुंतला-दुष्यंत की कथा या पुरूरुवा की कथा। राधा-कृष्ण की लीला का भी लोकायत रूप में आना कोई आश्चर्य नहीं।

डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा के शब्दों में, 'सभी समाजों के पास वेद होता है अर्थात् अपौरुषेय वाक्य,इ लहामी कलाम, ईश्वर की वाणी और इसीलिए सभी संदेहों और प्रश्नों से पार पवित्र और सनातन सत्यों का भंडार, अजर, अमर, अनादि दिव्य ज्ञान जिस तर्कों द्वारा प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं समझी जाती वरंच जिसे श्रद्धा और विश्वास के साथ स्वीकार कर लिया जाता है। (लोक, वेद, विज्ञान : प्रामाणिकता के तीन स्रोत : लोकवार्ता विज्ञान, पृ.२४५)

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में-'भारतीय आकाश के नीचे युग-युगों तक वेद और लोक-इन दोनों की समन्वित और संयुक्त सरणि हमें उपलब्ध होती है। ब्रह्म के समान यदि भारतीय जीवन को चतुष्पाद् माना जाय तो उसके एक पदा की प्रतिष्ठा वेद या शास्त्रीय चिंतन में और त्रिपाद की अभिव्यक्ति लोक के क्रियाशील जीवन में पाई जाती है। अतएव भारतीय शास्त्र की व्याख्या का सर्वोत्तम क्षेत्र यहाँ का वास्तविक लोकजीवन ही है।' (मध्ययुगीन हिंदी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन की भूमिका)

'कुमाऊँ का लोकसाहित्य' की भूमिका में डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा कि 'आदान-प्रदान का वेगवान चक्र लोक और वेद के बीच में घूमता रहा है। वस्तुतः लोकसाहित्य के मूल स्रोतों की खोज में हमें उपलब्ध साहित्य की प्राचीन परंपराओं तक जाना ही होगा। वैदिक सामग्री में कितना अंश लोकसाहित्य का है अथवा दूसरे प्रकार से कहें तो लोकसाहित्य में कितना अंश वैदिक प्रतीकों का है,इ सका लेखा-जोखा हमें देखना होगा और अब वह समय आ गया है, जब इस प्रकार के अध्ययन का प्रवेशद्वार बनाया जाय।'

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९७

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.